Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. XV, Issue No. 6, August-2018, ISSN 2230-7540

भास के नाटकों का सामाजिक अध्ययन

Rajni Mudgal[1]* Dr. Sukdev Bajpaye[2]

[1] Research Scholar, Swami Vivekanand University, Sagar (M.P.)

[2] Associate Professor, Sanskrit Department, Swami Vivekanand University, Sagar, (M.P.)

सार – मानव सभ्यता के विकास में साहित्य का अमूल्य योगदान है। मानव ने समाज से ही विचारों का आदान-प्रदान सीखा है। समाज के लोगों के व्यवहारों को कवियों ने शब्दों में ढालकर उसे साहित्य का जामा पहनाया है। साहित्य के माध्यम से ही समाज में क्रान्ति का आगमन हुआ है। मनुष्यों की विचार धारा में परिवर्तन और उसका संस्कारी करण करने का काम साहित्य ही करता आया है। इतिहास इस बात का गवाह है कि विश्व की सभ्यताओं के विकास में साहित्य की अमूल्य भूमिका है। कोई भी रचनाकार जब अपनी कलम को लिखने के लिए उठाता है तो सबसे पहले उसके सामने समाज की छवि ही उभर कर आती है। रचनाकार समाज में व्याप्त विसंगतियों के बारे में लिखता है। उसके लिखने का उद्देश्य समाज को मार्ग दिखाना होता है। वह अपनी रचनाओं से समाज की विसंगतियों पर प्रकाश डाल कर समाज के लोगों को जागरुक करता है। समाज के लोगों ककी नैतिकता का पतन होने, अराजकता की स्थिति उत्पन्न होने, कुरीतियों के बढ़ने, शोषण, अत्याचार के बढ़ने आदि परिस्थतियों से पीड़ित समाज को मुक्त करने के लिए एक कलमकार कलम चलाता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और हव समाज के बिना जीवित नहीं रह सकता। एक व्यक्ति को पल-पल समाज का आश्रय लेना पड़ता है। सुख-दुःख आदि द्वन्द्वात्मक परिस्थितियों के बीच वह शान्ति का अनुभव करता है। कवि भी समाज का ही एक अंग होता है। उसकी लेखनी समाज की ही लेखनी होती है। उसकी कल्पनात्मक रचनाओं में भी समाज ही छाया रहता है। वह समाज में घटने वाली हर घटना को साहित्य में पिरोता है। वस्तुतः समाज और कवि तथा साहित्य और कवि के बाच गहरा सम्बन्ध होता है।

---------------------------------X--------------------------------

कोई भी साहित्यकार समाज एवं संस्कृति से कटकर साहित्य की रचना नहीं कर सकता। उसके साहित्य में कहीं न कहीं अवश्य ही समाज एवं संस्कृति का छायांकन होता है। वह अपने सृजनकर्म के लिए पूर्व रचनाओं के साथ समाज से भी विषयों को ग्रहण करता है। समाज में नित्यप्रतिदिन घट रहीं घटनाओं तथा विविध मान्यताओं व परम्पराओं को आधार बनाकर रचनाधर्मिता का संवरण करता है। सामान्यतः कोई भी रचनाकार किसी भी समाज, इतिहास, प्रकृति अथवा मानवेतर प्राणियों की संवेदनात्मक परिस्थितियों से तादात्म्य स्थापित कर विशेष सघन अनुभूति का अनुभव करते हुए रचनात्मक क्रिया से जुड़ जाता है। वह अपनी रचना में संपूर्ण समाज को आधार बनाता है या उससे जुड़ी छोटी सी घटना को लेकर काव्य रचना करता है, यह रचनाकार की उस समय की मानसिक स्थिति पर निर्भर करता है। एक रचनाकार का हृदय समाज की हर छोटी सी छोटी घटना के प्रति गहरी अत्मीयता रखता है। कवि या साहित्यकार की यही स्थिति उसकी रचना को प्रासंगिक एवं महŸवपूर्ण बनाती है। साहित्य समाज का दर्पण होता है। वह समाज का प्रतिबिम्ब और मार्गदर्शक बनकर उसे सही दिशा और दशा प्रदान करता है। वह अतीत, वर्तमान और भविष्य का दर्पण है जिसे देखकर मानव समाज शिक्षा ग्रहण करता है। संसार की सभ्यता एवं संस्कृति का ज्ञान साहित्य में समाया हुआ रहता है। साहित्य लोकजीवन की गाथाओं का निरुपण होता है। चाहे कोई रचनाकिसी भी काल या किसी भी लेखक के द्वारा लिखी गई हो उसमें तात्कालिक परिस्थितियों, लोक आचरणों, रहन-सहन, खान-पान, वेशभूषा आदि का होना अपरिहार्य है। चाहे वह रचना ऐतिहासिक, धार्मिक अथवा काल्पनिक ही क्यों न हो उस पर जनमानस की चिन्तनधाराओं का प्रभाव अवश्य पड़ता है। समाज का प्रभाव साहित्य पर और साहित्य का प्रभाव समाज पर पड़ना एक स्वाभाविक बात है। समाज और साहित्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। साहित्य का समाज से उसी प्रकार का सम्बन्ध है जिस प्रकार शरीर का आत्मा के साथ। समाज रुपी शरीर नष्ट हो सकता है किन्तु साहित्य रुपी आत्मा का विनाश नहीं

www.ignited.in

मानवीय सभ्यता की उद्दात्त-वृत्तियों के परंपरागत रूप को ही संस्कृति कहा जाता है। संस्कृति से रहित समाज की कल्पना ही नहीं की जा सकती है, क्योंकि संस्कृति से ही समाज की पहचान बनती है और संस्कृति को सभ्यता का सूचक माना जाता है। साहित्य को समाज एवं उसकी संस्कृति का दर्पण कहा जाता है। उसका दायरा अतिविस्तृत और बहुरूपी होता है। भास के नाटकों में समाज एवं संस्कृति की गहरी छाप दिखाई देती है। वस्तुतः भास एक ऐसे रचनाकार हैं जिनकी रचनाएं पाठको के सामने धर्म के साथ समाज और संस्कृति का समन्वित रुप स्थापित करती हैं। उनकी रचनाएं जनमानस के साथ गहरा संबंध रखती हैं। इनकी रचनाओं में सामाजिक चेतना के सूक्ष्म से सूक्ष्म पहलुओं का चित्रण दिखता है तो विराट् का व्यापक भाव भी। समाज के जनसाधारण से लेकर उच्चवर्ग के लोगों की हर छोटी-बड़ी परेशानियों, विचारों, अनुभूतियों को कवि ने अपने जीवन में आत्मसात किया होगा तभी उनकी रचनाओं में समाज की समग्रताओं का वर्णन पाया जाता है। समाज में व्याप्त रुढ़ियों, परम्पराओं, मान्यताओं, आपदाओं, आकांक्षाओं, अपेक्षाओं, शोषणों आदि अनेक पहलुओं पर पर्याप्त सामग्री उनकी रचनाओं में उपलब्ध है, जिससे समाज के प्रति कवि की व्यापक अभिरुचि एवं संवेदना सिद्ध होती है।

शासकलीन समाज की प्रचलित संस्थाएं

महाकवि भास के नाटकों में वर्णित समाज की रूपरेखा मौर्यकालीन है। ऐसे तो उनके अन्य नाटकों में भारतीय समाज के विविध पक्षों का पर्याप्त वर्णन उपलब्ध है। उनके अन्य नाटको पर यहाँ विचार करना विषयान्तर हो सकता है, इसलिए यहाँ केवल स्वप्नवासवदत्तम् के आधार पर इसकी विवेचना अधिक प्रासंगिक होगा। इस नाटक में भारतीय समाज को जानने के लिए पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। इस नाटक में मौर्यकलीन प्रथाएं, सामाजिक उत्सव, रहन-सहन, भेजन, पान, वस्त्र, आभूषण की उपलब्धि पायी जाती है। होता। धर्मशास्त्रों के अनुसार सामाजिक व्यवस्था को सुचारु रुप से चलाने के लिए वर्णव्यवस्था एवं आश्रमव्यवस्था आवश्यक है। समाज की समस्त संस्थाओं, ईकाइयों समूह, समुदाय आदि के स्वरुप एव व्यक्तित्व के निर्माण में इन संस्थाओं की अग्रगण्य भूमिका होती है। हमारे ऋषिमुनियों ने मानव जीवन के सम्पूर्ण उद्दश्यों की साधना के लिए जिस वर्णव्यस्था की स्थापना की थी और उनके कार्यों का निर्धारण किया था, वह आज के परिदृश्यों में भी देखा जा सकता है। आज भले ही वर्ण के अनुसार आजीविका चयन की बाध्यता नहीं है किन्तु व्यक्ति स्वयं की क्षमता और रुचि के अनुसार जिस किसी भी आजीविका का चयन कर रहे हैं। दर्जी का काम करने वाला चाहे ब्राह्मण ही क्यों न हो उसकी जाति दर्जी हो जाती है। लोग उसे दर्जी कह कर पुकारते हैं। इसी प्रकार दुध का व्यवसाय करने वाला आज कोई ग्वाला ही नहीं है फिर भी लोग उसे ग्वाला कहते हैं। कर्मो के अनुसार यदि जाति का विभाजन न होता तो आज का सामाजिक परिदृश्य कुछ और ही होता। सामाजिक वर्णव्यवस्था में व्यक्ति के गुणों को देखा जाता था। कोई भी जाति किसी भी काम को कर सकता है। धर्म ग्रन्थों में ऐसा देखा गया है कि जो लोग तप, विद्या,शिक्षा, यज्ञ आदि में रुचि रखते थे उन्हें ब्राहमण की संज्ञा दी जाती थी। जो वर्ग शासन संचालन और समाजिक व्यवस्था के संचालन में रुचि रखते थे उन्हें क्षत्रिय कहा जाता था। जिन व्यक्तियों की रुचि व्यवसाय करने में होती थी वे वैश्य तथा जो नौकरी या सेवा में रूचि रखते थे उन्हें शूद्र कहा जाता है।

समाज के विभिन्न आदर्श, नियंत्रित जनरीतियों, प्रथाओं, मान्यताओं, रूढ़ियों आदि के रूप में पाये जाते हैं। इसलिए समाज के विभिन्न क्रियाकलापों, में सम्यक् व्यवस्थाओं को स्थापित करने एवं पारस्परिक निर्भयता बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें विशेष संगठनात्मक रीतियों से संचालित किया जाय। ऐसे संगठनों से ही एक आदर्श समाज की स्थापना होती है। समाज का यह स्वरूप पीढ़ियों तक अपना प्रभाव कायम रखता है। इस संगठन का नाम ही सामाजिक संस्था है। चाल्सहॉटनकूले नेइस संबन्ध में कहा है-

'सामाजिक संस्थाएं किसी अत्यन्त महत्वपूर्ण आवश्यकता की पूर्ति के लिए सामाजिक विरासत में स्थापित सामाजिक व्यवहारों का एक जटिल तथा घनिष्ठ संगठन है।'

भास के युग में भारतीय समाज समृद्ध अवस्था में था। पूरा समाज सामाजिक नियमों के दायरों में निबद्ध जीवन यापन कर रहा था। वर्णाश्रम व्यवस्था की गहरी नींव स्थापित हो चुकी थी। समाज के लोगों का चरित्र विकसित था। चरित्र की रक्षा के प्रति पूरी तरह सजग रहा करते थे। भास ने अपने प्रत्येक नाटक में विभिन्न पात्रों के माध्यम से दान, तप, त्याग, सेवा आदि भावनाओं को दिखलाया है। उन्होंने वर्णाश्रम व्यवस्था में ब्राहमणों एवं परिव्राजकों को सबसे महत्वपूर्ण स्थान दिया है। श्रमणों को अवैदिक एवं नग्न श्रवणक कहकर उनका मजाक किया गया है। राजाओं की दृष्टि में भी ब्राहमणों को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। ब्राहमणों को अपमान करने वाले को राजशासन के द्वारा कठोर दण्ड का भी विधान था तथा समाज भी उसे निन्दनीय मानता था। प्रतिमा नाटक में सूर्यवंशीय राजाओं की प्रतिमा को वहाँ के लोगों ने भरत को ब्राहमण समझ कर प्रणाम नहीं करने दिया गया। इससे सिद्ध होता है कि ब्राहमणों को समाज परम पूज्य मानता था। कर्णभारम् में एक ब्राहमण के वचन से ही कर्ण विमला नामक अस्त्र ग्रहण करता है। महाकवि भास ने अपने नाटकों के द्वारा सामाजिक

www.ignited.in

व्यवस्था का जो खाका खींचा है उससे निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैं-

1. मानव जीवन का सबसे बड़ा उद्देश्य पुरुषार्थ सेवा एवं परोपकार को मानागया है। संसार के सभी दुःखियों की सेवा करना, उनके कष्टों को दूर करना ही मानव का परम कर्तव्य और धर्म है। संसार के सम्यक् संचालन के लिए व्यक्ति को व्यवहारिक होना आवश्यक है। समाज के सज्जन एवं दुर्जन की पहचान कर सज्जनों की रक्षा एवं दुष्टों की संहार करना आवश्यक है जिससे सामाजिक व्यवस्थाएं निर्विघ्नता पूर्वक संचरित हो सकें। राम,भरत, लक्ष्मण, यौगन्धरायण के समान उन्नत चरित्र वाले व्यक्तियों से राष्ट्र व समाज का कल्याण हो सकता है।

2. त्यागपूर्वक भोग ही समाज को आदर्श बनाता है। दोनों के समन्वयन से आत्मा का विकास होता है।

3. समाज में यज्ञ, दान एवं कर्मकाण्ड की प्रधानता थी।

4. समाज में समरसता की भावना भरी थी। सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय, जीवन-मृत्यु जीवन के अरिहार्य अंग हैं। समाज एकनिष्ठ रागात्मक प्रवृत्ति को स्वीकार नहीं करते थे।

5. पुरुषार्थ के साथ भाग्य की सत्ता को भी लोग स्वीकार करते थे। केवल भाग्यवादी या केवल पुरुषार्थवादी जीवन में सफल नहीं होता। पुरुषार्थ से ही काष्ठमंथन करे अग्नि को उत्पन्न किया जा सकता है, धरती के हृदय को विदीर्ण कर के मणिमाणिक्यों को प्राप्त किया जा सकता है। जो परिश्रमी होता है भाग्य उसी का साथ देता है।

6. यह सारा संसार सचेतन है, समग्र, अखण्ड और एक है। जब तक व्यक्ति के अन्दर द्वैतभाव रहता है, तब तक शकुनि और दुर्योधन का अस्तित्व बना रहता है और जब उसके भीतर अद्वैतभाव जागृत होता है तब कृष्ण, अर्जुन, कर्ण जैसे लोगों के दर्शन होते हैं। महाकवि भास ने सारे मतभेदों को भूलाकर लोगों को एकता और समानता का संदेश दिश है।

7. भास ने कामवासना को हेय नहीं माना है। वे काम को सृष्टि के विकास का श्रेय व कारक मानते हैं। संसार में व्याप्त भौगिक पदार्थों के भोग के लिए प्रेरित अवश्य किया है किन्तु उसके संयमित प्रयोग पर बल दिया है। भोग प्रेय अवश्य है किन्तु श्रेय का मार्ग प्रेय के मार्ग से ही जन्म लेता है। धर्मविहित प्रेय ही महनीय होता है और इसी से अक्षय सुख की प्राप्ति होती है। धर्म के बन्धनों से आबद्ध काम से ही अविमारक का जन्म होता है और अविमारकों से ही समाज का कल्याण होता है।

8. राष्ट्र के कल्याण का उत्तरदायित्व मन्त्रिपषिद पर होता है। जिस राज्य की मन्त्रिपरिषद जितनी सशक्त और निस्पृह होती है, उस राज्य या राष्ट्र का विकास उतना ही अधिक होता है। भास ने राजा और उसके मन्त्रियों के परस्पर सहयोग को राष्ट्र विकास का मूल माना है।

9. भास ने समाज के लोगों को अपने कर्तव्यों के पालन के लिए सजग होने की प्रेरणा दी है। समाज के अन्दर असहनशीलता, असावधानी, नीतिमार्ग का उल्लंघन, स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति होने पर अराजकता एवं विनाश का वातावरण उत्पन्न होता है। युवावस्था, ऐश्वर्य की प्रचुरता, अविवेकिता एवं आन्तरिक कलह से समाज की अवनति होती है। अविमारक में कवि ने नायक अविमारक के द्वारा विकहीन तारुण्य की आलोचना करते हुए दिखलाया गया है-

रागं विजृम्भयति संश्रयते प्रमादं,

दोषान् न चिन्तयति साहसमभ्युपैति।

स्वच्छन्दतो व्रजति नेच्छति नीतिमार्गं?

बुद्धिशुभां सुविदुषामवशीकरोति।।1

ब्राह्मण

महाकवि भास ब्राह्मण धर्म से पूर्ण परिचित थे। उन्होंने स्वप्नवासवदत्तम् में ब्राह्मणों के बारे विस्तार से चर्चा की है। पात्र विवेचन के क्रम में कंचुकी नामक दो ब्राह्मण पात्रों को उपस्थापित कर उनकी विशेषता को प्रत्यक्षतः स्वीकार किया है। उन्होंने इस नाटक के माध्यम से ब्राह्मणों के कर्तव्यों का भी उल्लेख किया है। कवि ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि समाज में ब्राह्मणों की भूमिका अग्रगण्य है। समाज को सही दशा और दिशा प्रदान करने में ब्राह्मण ही सक्षम हैं क्योंकि शिक्षित होने के कारण उनमें विवेकशीलता अधिक होती है। स्वप्नवासवदत्तम् के प्रथम अंक में कंचुकी के माध्यम से यह संदेश दिया है कि वह कौन स्नातक है जो गुरु से शिक्षा प्राप्त करने के बाद उन्हें दक्षिणा देना चाहता है? निर्धन श्रेणी के विद्यार्थियों के लिए दक्षिणा की व्यवस्था राजकुलों से दी जाती

www.ignited.in

थी। गुरुकुल का स्नातक अपनी इच्छा से अध्यापन का कार्य चुनता था। अध्ययन और अध्यापन में ही ब्राह्मणों का जीवन समाप्त हो जाया करता था। वैसे ब्राह्मण छात्रों के द्वारा प्रदत्त दक्षिणा से ही अपनी आजीविका चलाते थे। राजकुलों के द्वारा भी उन्हें आर्थिक सहायता दी जाती थी। महाकवि भास के स्वप्नवासवदत्तम् के अध्ययन से यह भी पता चलता है कि उस समय राकुलों की स्त्रियाँ ब्राह्मणों को प्रचुर मात्रा में द्रव्यादि वस्तुओं का दान देते थे। दान में प्राप्त वस्तुओं से गुरुकुलीय आश्रमों की व्यवस्था होती थी।

महाकवि भास ने समाज के चातुवर्ण्य व्यवस्था को स्वीकार किया है। उन्होंने चतुर्णानां वर्णानामयम् कहकर चारों वर्णों की उपयोगिता को स्वीकार किया है। ये चारो वर्ण अपने-अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों का अनुसरण करते हैं। भास ने इन चारो में सबसे अधिक ब्राह्मणों को सम्मान दिया है। स्वप्नवासवदत्तम् के प्रथम अंक में मगधराजकुमारी पद्मावती अपनी माता के साथ तपोवन में रहने वाले ब्राह्मणों को यथेच्छ दान देने के लिए आती है। कांचुकीय के द्वारा कहे गए इस कथन में ब्राह्मणों के प्रति कवि की श्रद्धा प्रकट होती है-

कस्यार्थः कलशेन को मृगयते वासो यथानिश्चितं,

दीक्षां पारितवान्किमिच्छन्तिपुर्दयं गुरोर्यद् भवेद्।

आत्मानुग्रहमिच्छतीह नृपजा धर्माभिरामप्रिया,

यद् यस्यास्ति समीप्सितं वदतु तत् कस्याद्य किं दीयताम्।।4

क्षत्रिय

महाकवि भास ने अपने नाटकों में क्षत्रियों की परम्परागत सामाजिक व्यवस्था को अपने दृष्टिकोण के अनुसार परिभाषित किया है। स्वप्नवासवदम् में उदयन से लेकर मन्त्रियों तक किसी को क्षत्रीय जाति से नहीं जोड़ा है। धर्मशास्त्रों में एक क्षत्रिय का जो लक्षण बताया गया है, उसके अनुसार उन्होंनेय कहीं उल्लेख नहीं किया है। स्वप्नवासवदत्तम् का कोई भी पात्र क्षत्रिय धर्म का पालन करते या परम्परागत परिभाषाओं के अनुसार आचरण करते हुए नहीं दिखता है। इस नाटक में कवि ने कहीं भी इस शब्द का प्रयोग नहीं किया है। इसमें अन्य जातियों का उल्लेख अवश्य किया गया है। इस नाटक की सबसे बड़ी विशेषता है यह है कि इसमें राजाओं की युद्धप्रियता, प्रजापालन, शस्त्रों में निपुणता, दान, यज्ञादि करना आदि का उल्लेख नहीं किया गया है। किन्तु इससे यह नहीं कहा जा सकता है कि भास को क्षत्रियत्व का ज्ञान नहीं था और न ही यह सिद्ध होता है कि उस जमाने में वर्णव्यवस्था में क्षत्रियों की गणना नहीं होती थी। उनके युग में भी क्षत्रियों की वीरता, युद्धप्रियता, शासनक्षमता आदि क्षत्रियोचित कर्म प्रसिद्ध थे। संस्कृत साहित्य के इस महाकवि ने अपने नाटक स्वप्नवासवदत्तम् में धर्मशास्त्र के प्रायःसभी तत्वों का वर्णन किया

समाज में ब्राह्मणों के बाद क्षत्रियों को स्थान दिया गया है। जो अपनी प्रजा की रक्षा करने में सक्षम हो और शूर और पराक्रमी हो तथा शत्रुओं के दमन करने में सक्षम हो वही क्षत्रीय कहलाता है। भास के सभी नाटकों के क्षत्रिय नायकों में ये गुण पाये जाते हैं। स्वप्नवासदत्तम् में उदयन का अधिकांश चरित्र पत्नी प्रेम के आसपास गुजरता है किन्तु कवि ने उसके क्षत्रियोचित गुणों का वर्णन भी करता है। स्वप्नवासवदत्तम् नाटक के तीसरे अंक में मगधराज का कंचुकी जब उन्हें बुलाने आता है तो वह बड़े ही वीरोचित शब्दों में उसका परिचय देता है-

उपेत्य नागेन्द्रतुरंगतीर्णे तमारूणिं दारूणकर्मदक्षम्।

विकीर्णबाणोग्रतरंगभंगे महार्णवामे युधि नाशयामि।16

वैश्य

भारतीय संस्कृति में वैश्यों को विराट् पुरुष के पैरों से उत्पन्न माना है। इस वर्ण की सामाजिक मान्यता थी। समाज के पालन-पोषण एवं आर्थिक व्यवस्था में इनकी भूमिका अग्रगध्य थी। संस्कृत साहित्य के मूर्धन्य साहित्यकार महाकवि भास ने स्वप्नवासवदत्तम् में वैश्य वर्ण के वर्णन में जहाँ उदासीनता दिखलाई है वहीं चारुदत्तम् में वैश्यों के सामाजिक उत्थान में भूमिका को भी परिपुष्ट किया है। व्यापार और वाणिज्य वैश्यों की आजीविका के मुख्य साधन थे। चारूदत्त, प्रतिमा, पंचरात्र आदि नाटकों में वैश्यों के बारे में पर्याप्त उल्लेख मिलता है। जन्म से ही उन्हें व्यापार का अधिकार प्राप्त था। परिस्थिति के अनुकूल नहीं होने पर वे दासत्व को भी अपनाते थे। न केवल वैश्यों में यह स्थिति थी अपितु एक ब्राह्मण भी अपनी वृत्ति को छोड़कर व्यापार आदि कर्म किया करता था। जन्म से ब्राह्मण होने के बाद भी चारूदत्त व्यापारी था। स्पष्ट है कि भास के समय वैश्यों का एक प्रबल समाज था। समाज में उनका गौरवमय स्थान प्राप्त था। देश को समृद्ध करने में इनकी भूमिका सराहनीय हुआ करती थी। यह जाति देश के कोने कोने में फैलकर अपना व्यापार करती थी। भास ने वैश्यों के लिए 'सार्थ' शब्द का प्रयोग किया है, जो कि व्यापारियों के समुदाय के लिए प्रयोग किया गया है। इस समुदाय के प्रधान को सार्थवाह कहा जाता था। भास ने धन-प्रधान मनोवृत्ति के कारण उन्हें स्वभावतः कठोर, लोभी, शिष्टजन विरोधी के अलावे व्यवसाय में कठोर कहा है।

लुब्धोऽर्थवान् साधुजनावमानी वणिक्स्ववृत्तावतिकर्कशश्च।

यस्तस्य गेहं यदि नाम लप्स्ये भवामि दुःखेपहतां चचिते।।22
चारुदत्त 3/7

शूद्र

भारत की वर्णपरम्परा में चैथा स्थान शूद्रों का है। समाज में इसे सबसे निम्न श्रेणी से देखा जाता था। धार्मिक एवं धर्मग्रन्थों की दृष्टि से भले ही यह जाति समाज के महत्वपूर्ण अंग थी किन्तु सामान्य समाज में उनका स्थान सबसे नीचा था। भास के नाटको में शूद्र पात्रों को पर्याप्त स्थान दिया गया है। शूद्रों को वेदमन्त्रों के पाठ का अधिकार नहीं दिया था। वे यदि देवताओं की अर्चना भी करते थे तो बिना मन्त्रों के ही।

वार्षलस्तु प्रणामः स्यादमन्त्रार्चितदैवतः।24

उन्हें न केवल वेदमन्त्रों को पढ़ने के अधिकारों से वंचित किया जाता था अपितु संस्कृत पढ़ने और बोलने के लिए भी स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं थी। पंचरात्रम् कई प्रसंगों सिद्व होता है कि यह जाति अन्य जातियों के लिए अस्पृश्य थी-

द्विज इव वृषलं पाश्र्वं न सहते।25

शूद्रों का सान्निध्य समाज के अन्य वर्ण कभी नहीं चाहते थे। उनके लिए निवासभूमि भी की अलग होती थी किन्तु उच्चवर्गों के साथ वे विनम्रतापूर्वक बातें भी किया करते थे-

नीचैरप्यभिभाष्यन्ते नामभिः क्षत्रियान्वयाः। 26

स्वप्नवासदत्तम् के सभी शूद्र पात्रों के द्वारा प्राकृत का ही प्रयोग किया गया है। महाकवि भास के युग में वर्णव्यवस्था का कठोरतापूर्वक पालन किया जाता था। किसी को वर्णपरित्याग का अधिकार नहीं दिया गया था। इसके अलावे अनुलोम या प्रतिलोम विवाह की परम्परा भी नहीं थी। समाज केवल चार जातियों में विभाजित था। भास के समय पूर्वोक्त चारो जातियों के बीच धीवर, लुब्धक, नापित, चर्मकार आदि उपजातियों का प्रदुर्भाव नहीं हुआ था।

अन्त्यज

महाकवि भास ने पूर्वोक्त चार वर्णों के अलावे कुछ ऐसे वर्णों का उल्लेख किया है जिनकी गणना अन्त्यज के रुप में की जाती थी। अस्पृश्य होने के कारण यह वर्ण नगर से बाहर दूर वस्तियों में निवास करती थ। इनका जीवन प्रायः प्रच्छन्न ही व्यतीत होता था। यह जाति कुल-विकल और गोत्र आदि से भ्रष्ट होते थी। रुप, रंग, ज्ञान, धन आदि से वंचित यह जाति सबसे दीन-हीन हुआ करती थी। अविमारक में इसकी चर्वा इस प्रकार की गई है-

श्रुतमस्माभिःरन्त्यज इति।27

यहाँ अन्य उदाहरण भी द्रष्टव्य है-

देवरुपं ब्रहमजं तस्य वाक्यं,

क्षात्रं तेजः सौकुमार्यं बलं च।

यद्येवं स्यात् सत्यमस्यन्त्यजत्वं,

व्यर्थोऽस्माकं शास्त्रमार्गेषुवेदः।।28

नारी शिक्षा एवं राजनीति

वैदिक समाज की तरह भास के काल में भी नारियों को शिक्षा का पूर्ण अधिकार था। ऐसे भी भारतीय संस्कृति में नारियों को देवी स्वरुपा कहा गया है। नाना नारीं निष्फला लोकयात्रा कहकर भारतीय संस्कृति में नारी को प्रधान माना गया है। वैदिक इतिहास नारियों का इतिहास रहा है। गार्गी, मैत्रायणी, लोपामुद्रा, महामाया दुर्गा, काली, लक्ष्मी, सीता, राधा, सरस्वती आदि असंख्य नाम नारी महिमा के सूचक हैं। वैदिक काल से लेकर गुप्तकाल तक नारी शिक्षा को पुरुषों के समान स्थान दिया गया था किन्तु मुगलकालीन भारत में नारियों की प्रतिष्ठा धूमिल होती गई। सुरक्षा की दृष्टि से न केवल शिक्षा से अलग किया गया अपितु बाल-विवाह की प्रथा भी लड़कियों को शिक्षा से दूर कर दिया।

विभिन्न कालों में हुण, शक आदि असभ्य जातियों ने भारत पर अक्रमण किया था। शायद भारतीय नारियों का शिक्षा में पिछड़ने का यही कारण है। परन्तु बाहय अनुमान को हम इसका मुख्य या एकमात्र कारण नहीं मान सकते। इसमें हमारा भी कुछ न कुछ दोष अवश्य है। युगों से जिस मानसिक, नैतिक तथा शारीरिक अत्याचार ने ईश्वर की प्रतिमा के समान मनुष्य को भारवाहक पशु एवं भगवती की प्रतिमा सदृश नारी को संतान उत्पत्ति करने वाली दासी और उसके जीवन को अभिशाप बना दिया। भारतीय संस्कृति या किसी भी धर्म में नारी शिक्षा का निषेध नहीं है। किन्तु मध्यकालीन भारत में इस्लामिक प्रभावों के कारण भारत में नारी शिक्षा की धारा अवरुद्ध हो गई थी। मुगलों के भय के कारण घर की चहादीरियों में कैद नारीशिक्षा का पतनो हुआ ही साथ ही साथ पंडितों के द्वारा शास्त्रों की गलत व्याख्या कर सामान्य जनमानस में नारी शिक्षा के प्रति उदासीनता के भाव भरा गया।

मनु ने कहा है “कन्या अपि पालनीया शिक्षणीया अति यत्नतः” पुत्रियों को बडे यत्न से पालन करना चाहिए। तथाकथित ब्राह्मणों एवं पण्डितों ने भले ही नारियों को आराध्या, पूज्या, वन्द्या कहकर सैद्घान्तिक रूप से ग्रन्थों में महनीय स्थान दिया हो परन्तु यथार्थ रूप में विशेषकर शिक्षा के क्षेत्र में उनकी स्थिति अत्यन्त ही दयनीय थी। वेद-शास्त्रों,पुराणों आदि के कल्पित उद्धरणों की गलत व्याख्या करके उन्होंने सिद्ध करने का प्रयास किया कि नारियों को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है।

महाकवि भास के समय नारी शिक्षा की स्थिति संतोषप्रद थी। पुरुषों के समान नारियों को भी शिक्षाप्राप्ति का पूरा अधिकार था। किसी भी नारी को आदर्श एवं विदुशी बनाने के लिए शिक्षा की आवश्यकता होती थी। भास के नाटकों के सभी नारी पात्र शिक्षित हैं। प्रतिज्ञायौगन्धरायण में जब वासवदत्ता की शिक्षा का प्रश्न उठता है तो उसके पिता महासेन कहते हैं कि मैंने अपनी बेटी के लिए संगीत शिक्षा की पूरी व्यवस्था की है। कुरंगी भी शिक्षिता है। वह अपने मनोभावों को लिखकर व्यक्त करती है। अविमारक नाटक में जब अविमारक राजमहल में प्रवेश करता है तो उसे वहाँ शिक्षित नारियों की संही की समवेत ध्वनि सुनाई पड़ती है। भास के नाटकों के नारी पात्रों के संवादों के द्वारा भी कवि ने उन्हें शिक्षित होने का प्रमाण दिया है। भास के समय कन्याओं को लिखना, पढ़ना, संगीत, नृत्य आदि की शिक्षा दी जाती थी। 81 प्रतिज्ञायौगन्धरायण में उत्तरा नामक वैतालिका का उल्लेख आया है जो संगीत की प्राध्यापिका थी -

उत्तरायां वैतालिक्याः सकाशे वीणां शिक्षितुं नारदीयां गतासीत्।82

उपसंहार

समाज का वास्तविक प्रतिबिम्ब साहित्य में दृष्टिगोचर होता है, और साहित्य का उत्कृष्ट रूप नाट्य (रूपक) है। अध्ययेतव्य प्रमुख संस्कृत रूपकों में वर्णित नाट्य विषय तत्कालीन समाज को उपस्थित कर के आधुनिक समाज के समक्ष प्रस्तुत करता है, जिसके माध्यम से सामाजिक पूर्वकालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि समाज-शास्त्रीय परिस्थितियों से अवगत होकर, उससे प्रेरणा ग्रहण करता है। समाज-शास्त्रीय-अनुशीलन के परिप्रेक्ष्य में भास के प्रमुख रूपकों के विवेचन-क्रम में अध्ययन के विषय में प्रस्तुत रूपकों को अध्ययन और अनुशीलन का विषय निर्धारित किया गया है, जिसमें भास नाटक-चक्रों को आधार बनाया गया है। महाकवि भास के नाटकों के आधार पर तात्कालिक समाज की स्थितियों, उस समय की सामाजिक व्यवस्थाओं को उभारने की कोशिश की गई है। कवि या रचनाकार अपनी कृतियों में कहीं न कहीं अपने समय की सामाजिक मान्यताओं, रीति-रिवाजों, रहन-सहन, आचारों विचारों आदि को स्थान अवश्य देता है। इस दृष्टिकोण से इसमें विचार किया गया है। इसके अन्तर्गत परिवार, पारिवारिक सदस्यों, शिक्षा, धर्म,जाति-व्यवस्था आदि को लिया गया है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

1. प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धनतिक्रम्य वर्तमानकवेः कालिदास्य क्रियायां कथं परिषदो बहुमानः। (मालविकाग्निमित्रम् प्रथम अंक)

2. सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः।

   सापाताकैर्यशो लोके भासो देवकुलैरिव।। (हर्षचरितम् श्लोक 15)

3. हुतोऽनेन मम भ्राता मम पुत्रः मम पिता। (काव्यालंकार अध्याय -4)

4. अवन्तिसुन्दरीकथा श्लोक 11

5. भासे ज्वलनमित्रे कुन्तीदेवो च यस्य रघुकारे।

   सौबन्धे च बन्धे हारीचन्द्रे चानन्दः।। (गउडवहो पृ.800)

6. क. शरच्छशांकगौरेण वाताविद्धेन भामिनि। (काव्यालंकारसूत्रवृत्तिः 5-3)

   ख. यो भतृपिण्डस्य कृते न युध्येत्।(प्रतिज्ञायौगन्धरायण 4-2)

   ग. यासां बलिर्भवति मद्गृहदेहलीलाम्।

   हंसैश्च सारसगर्णश्च विलुप्तपूर्वम्।।(काव्यालंकार1-5)

7. भासनाटकचक्रेऽपिछेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्

   स्वप्नवासदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः।। (अभिनवभारती)

8. संचितपक्षकवाटं नयनद्वारं स्वरुपतानेन उद्घाटय सा प्रविष्टा हृदयंगृहं मे नृपतनुजा।(ध्वन्यालोक)

9. स्वप्नवासवदत्ते पद्मावतीमवस्थां द्रष्टुं राजा समुद्रगृहकं गतः।(श्रृंगारप्रकाश)

www.ignited.in

10. यथाभासकृते स्वप्नवासवदत्ते शेफालिकामण्डपशिलातलमवलोक्य वत्सराजः-

पदाक्रान्तानि पुष्पाणि सोश्म चेदं शिलातलम्।

नूनं काचिदितिहासानां मां दृष्ट्वा सहसा गता।।

Corresponding Author

Rajni Mudgal*

Research Scholar, Swami Vivekanand University, Sagar (M.P.)